© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

बंगाल शैली के अन्दर स्वतन्त्र कला अभिव्यक्ति की शुरुआत

हिना यादव
शोध–छात्रा, दृश्य कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद,
उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना- अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा विकसित बंगाल शैली वस्तुतः चित्रकला का एक प्रकार से ऐसा आन्दोलन रहा, जिसे एक ओर भरपूर प्रशंसा और प्रोत्साहन मिला, वही दूसरी ओर विरोध भी हुआ। 1920 के बाद इसमें एक नया मोड़ आया। आगे चलकर इस शैली की ऊब भरी पुनरावृत्ति (मुगल तथा अंजता) से उकता कर, नयी प्रवृत्तियों से प्रभावित होने के कारण तरूण चित्रकारों में बंगाल शैली के प्रति जो विद्रोह उठ खड़ा हुआ उनमें कुछ क्षमतावान चित्रकार नये की तलाश के लिए छटपटा रहे थे। इसी समय बंगाल शैली के अन्दर ही बंगाल शैली के समनांतर कला की अन्य प्रवृत्तियां भी क्रियाशील थीं। गगनेन्द्रनाथ ठाकुर के प्रयोग इस दिशा में अग्रगण्य थे। इसी समय यामिनी राय लोककला पर कार्य कर रहे थे। इन सबसे बिल्कुल अलग हटकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं अमृता शेरगिल ने स्वतंत्र कला-अभिव्यक्ति की शुरुआत की। ये दोनों ही चित्रकार शैलीगत सीमाओं में न बधते हुए, अतीत के कला प्रतीक और पारम्परिक कला भाषा को न चुनकर खुद की नवीन कला भाषा गढ़ी। इन्होने कला को किसी विशेष वर्ग, ज़ाति, धर्म के लिए नही बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज के लिए समझा। ऐसे चित्रकारों का सम्पूर्ण कैनवास झुग्गी-झोपड़ियों में रह रहे लोगों, शोषित भूखे व हरिजन को समर्पित था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं अमृता शेरगिल सृजनात्मक प्रतिभा के धनी होने के साथ साथ चुनौतियों से लोहा लेने वाले थे। जिस समय पूरे बंगाल में मात्र बंगाल शैली का वर्चस्व था, चित्रकारों में नये प्रयोगों के प्रति हिचकिचाहट थी क्योंकि ऐसा करने पर उन्हे विद्रोही करार दिये जाने का भय था। कोई भी पुराना कभी भी नये को सहज ही नहीं स्वीकारता। इसी प्रकार नया भी पुराने को अपने अनुकूल नहीं पाता। पुराने को छोड़ नये को ग्रहण करना, परम्परा या रीति-बद्धता को तोड़, नयी लीकें कायम करना-सदैव विद्रोही की संज्ञा पाता रहा है। ऐसे में उस पूरी व्यवस्था के ही खिलाफ जाकर प्रयोग व स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का उद्घोष करने का श्रेय रवीन्द्रनाथ ठाकुर और अमृता शेरगिल को जाता है। दोनों ही कलाकारों ने भारतीय कला-जगत में व्याप्त ठहराव को तोड़ा।

मोटे तौर पर उन्नीसवीं सदी के अवसान और बीसवीं सदी के आगमन की संक्रान्ति बेला में अन्यान्य रचनात्मक अधिकारों, विशेषकर साहित्य के साथ-साथ चित्रकला के क्षेत्र में भारतीयता की- उसकी अस्मिता की खोज भी होने लगी थी। ये भारत में आधुनिक कला की शुरुआत थी। भारत की स्थापित चित्रकला शैली में बंगाल स्कूल का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि भारतीय आधुनिक चित्रकला के जन्म का इतिहास "बंगाल स्कूल" की स्थापना से आरम्भ होता है। यह वह आधारभूमि है जहॉं एक बार फिर से परम्परागत भारतीय चित्रकला के बीज बोए गए। राष्ट्रवादी आग्रहों से परिपूर्ण बंगाल शैली ने भारतीय चित्रकला को नवीन दिशा एवं पश्चिम से विमुख करने में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई। अपनी इन्ही विशिष्टताओं के चलते इसे 'पुनर्जागरण' के नाम से सम्बोधित किया गया परन्तु अपनी जड़ों की तरफ वापसी और उससे जुड़ाव का यह प्रयास कुछ इतना हो गया कि इसकी सीमाएँ स्पष्ट होने लगीं। इसका अतीतोन्मुख स्वभाव खलने लगा और 'स्वदेशी' के आग्रह में सबका अजन्तावर्ती होना उचित नही जान पड़ा। हालॉंकि स्वयं अवनीन्द्रनाथ और उनके शिष्यों की चित्राकृतियों में भी भारतीय परम्पराओं के साथ-साथ चीनी-जापानी और फारसी शैलियों का प्रभाव था और वास्तव में बंगाल शैली का आन्दोलन अपनी व्यापकता में (ओरिएन्टलिस्ट) प्राच्यवादी हो रहा था। उसमें यूरोपीय प्रभाव भी बिल्कुल खत्म नही हुए थे। बंगाल कला आन्दोलन जितना ऊँचा सिद्ध हुआ। इसकी कला उस ऊँचाई से पीछे रह गई। इसलिए इससे आगे के रास्ते की खोज शुरू हो गई।[1]

भारतीय चित्रकला को अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन और विहित पाठ्यक्रम से जोड़ने का औपचारिक उपक्रम अंग्रेजों के आने के बाद शुरू हुआ- सर्वप्रथम 1850 ई० में मद्रास स्कूल ऑफ आर्ट, 1854 में कलकत्ता स्कूल ऑफ आर्ट, 1857 में बम्बई स्कूल ऑफ आर्ट, 1875 में लाहौर स्कूल ऑफ आर्ट की स्थापना हुयी।[2] इन अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य अंग्रेजी शिक्षा नीति को भारत में लागू करना था। लार्ड मैकाले के मतानुसार यदि किसी जाति को गुलाम बनाना हो तो सबसे पहले उसकी भाषा और संस्कृति को नष्ट किया जाना चाहिए। मैकाले के इस कथन से बहुत पूर्व ही इस दिशा में अंग्रेजों के प्रयास आरम्भ हो चुके थे।[3] कला के क्षेत्र में ये कला महाविद्यालय उसी का परिणाम था। विदेशों से भारत के सम्पर्क के कारण यूरोप की नई-नई शैलियों का भारत में आगमन हुआ। विदेशी शैलियों की नकल कर खुद को मॉडर्न सझने की अवधारणायें लोगों के अन्दर भी पनपने लगी परन्तु अवनीन्द्रनाथ की कला द्वारा उत्पन्न की हुई राष्ट्रीय भावना ने विदेशी शैलियों के तूफान चलने से रोक दिया। ब्रिटिश कला के प्रतिरोध में जन्मी बंगाल शैली राजनीतिक और निजी ऐसे अनेक स्वार्थ रहे कि बंगाल शैली के कलाकार जिसके प्रति विद्रोह के लिए उठे मगर विद्रोह नहीं कर सके। दरसअल यह विद्रोह भी एक छद्म विद्रोह था। छद्म विद्रोह इसलिए था कि अवनीन्द्रनाथ व उनके शिष्यों ने यूरोपीय कलाओं और रंगों को स्वयं ही अपनाया था।

बंगाल स्कूल का अपना ऐतिहासिक महत्व है लेकिन बाद के अनेक महत्वपूर्ण और भारतीय कला को दिशा देने वाले कलाकारों ने इस स्कूल को अपना प्रेरणा स्रोत मानने से लगभग इनकार कर दिया। जब परम्परा का मतलब अतीत में झाँकने और आधुनिकता का अभिप्राय पश्चिमोन्मुख समझा जा रहा था, वैसे में रवीन्द्र नाथ टैगोर, अमृता शेरगिल सरीखे सर्जकों ने इस धारणा से बिल्कुल उलट एक नई परिभाषा गढ़ी। मात्र यही दो कलाकार अपने-अपने ढ़ंग से सार्थक एवं सकारात्मक हस्तक्षेप करते दिखे। बंगाल शैली से अलग हटकर सृजन कार्य करने वाले इन कलाकारों का मानना था कि कला पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होती है, कला की न कोई जात होती है, न ही धर्म। कला सम्पूर्ण मानव ज़ाति के लिए है और वह अपने नाना रूपों में इस धरा पर अमिट छाप छोड़ते हुए जन-जन को तृप्त करती रही है। शायद यही वजह रही कि इन मसीहाई कलाकारों ने एसी कलाकृतियाँ गढ़ी जिनका सरोकार मनुष्य के आदर्श, स्वभाविक गुणों, भावनाओं व अन्तस् से था अर्थात् समस्त मानव समाज से था। जिस समय ये कलाकार मानवीय स्पन्दन को रंगों द्वारा जीवित कर रहे थे तब देश गुलाम था, आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी। नया भारत बनाने के ढेरों ख्वाब देखे जा रहे थे। 1905 के बंग-भंग आन्दोलन के कारण बंगाली समाज क्षुब्ध हो उठा था इतना ही नही स्वाधीनता आन्दोलन की हलचल भरी घटनाएँ व शहीदों का बलिदान, जलियांवाला बाग (1919) के नृशंस नरमेघ कांड के विरोध स्वरूप गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अंग्रजों द्वारा दी गई नाइट हुड (सर) की उपाधि तक लौटा दी। गुरूदेव इस बर्बर हत्याकाण्ड से बेहद आहत थे। उन्होंने लिखा ''मैं अपने उन लाखों करोड़ों देशवासियों के साथ खड़ा हूँ, जो इस काबिल भी नहीं कि उन्हें इन्सान समझा जाए।''[4] राष्ट्रीय प्रेम की मशालें धधक उठी थी। स्वदेशी का नारा बुलन्द हो रहा था ऐसे में सच्चे चित्रकार के रूप में स्वदेशी माध्यम प्राकृतिक रंगों (विशेष रूप से फूलों व पत्तियों को मसल कर), कपड़े की लत्ती को स्याही में डुबोकर, अंगुलियों द्वारा, पेन्सिल, चारकोल, क्रेयान) का प्रयोग कर भारतीय कला को बिल्कुल नये व अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने पहले एकल रंग का, बाद में दो और फिर तीन या एकाधिक रंगों का प्रयोग किया। अपने जीवन के सन्ध्याकाल में कागज एवं कलम की भाषा को एक ओर रखकर रंगों और कूची द्वारा स्वप्नमयी चित्र एवं मानवीय स्पन्दन से लबरेज लगभग दो हजार से भी अधिक चित्र व रेखांकन बना डाले। लेकिन यह याद रखने की बात है कि वह उनका विद्रोह था, उस उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ जो उस समय हमारे देश पर छाया हुआ था और कलाकार लगभग अन्धी गलियों की तरफ भटकते हुए केवल नकल को ही उद्यत हो रहे थे। जो केवल राष्ट्रीयता का छद्म आवरण ओढ़े अपने समसामयिक हृदय विदारक घटनाओं के प्रति उदासीन थे।

प्राचीनता और परम्परा का बोझ अपने अनुपात में ही आगे विकास को रोकता है। यही कारण है कि आज का भारतीय कलाकार असमंजस्य की स्थिति में है। प्राचीनता और नवीनता, रूढ़ि और सुधार, धार्मिकता और सेक्यूलर विचार आदि के मध्य कलाकार अनिश्चित स्थिति में है। संस्कृति से उसका लगाव भी केवल अनिच्छा से है

अत: सृजनात्मकता की दृष्टि से वह अजीब उलझन में पड़ा है। कला अधेरे 'आत्म' को रोशन करती है। कलाकार अपनी कला में जग से, जीवन से और स्वयं से सम्बोधित होता है। उसके इस सम्बोधन में उसके होने का भाव छुपा होता है। साधारण शब्दों में जिस कृति में आत्म का विसर्जन न हो वह सृजन नहीं। यही विशेषता हमें महानायकों (रवान्द्र नाथ टैगोर, अमृता शेरगिल) की कृतियों में दिखने को मिलती हैं। जे. स्वामीनाथन के ये कथन तर्कसंगत है "रवीन्द्रनाथ अपने रेखांकन के लिए, जो निहायत सादगी से भरे हैं, मिथक और कथाओं की ओर आकर्षित नहीं होते। उनके कई अभ्यास चित्र चिन्तातुर विषयात्मकता- जो अर्धचेतन की गहराई से निकलने वाले अर्थों से भरे हैं- और जिन्हें हम खुशी से आधुनिक भारतीय कला का 'नायक' कह सकते हैं।"[5] यह आश्चर्य की बात है और शायद ही इस तरफ किसी का ध्यान गया हो कि उस समय केन्द्र बिन्दु में हम जिन चित्रकारों को पाते हैं- अवनीन्द्र नाथ टैगोर, नन्द लाल बोस, असित कुमार हल्दार, के.वेंकटप्पा, क्या वे सही अर्थों में आधुनिक भारतीय चित्रकला को नवीन दीठ दे पाएं? शायद ही, क्योंकि उनका प्रेरणा स्रोत वर्तमान और भविष्य में न होकर अतीत में रहा। प्राचीन कला शैलियों के आदर्शों, मानदण्डों, विशेषताओं को अपनाने, उन्हें दोहराने का आग्रह उन्हें आधुनिक कलीन कलाकार के स्थान की बजाय पुनरूत्थान कालीन कलाकार के स्थान पर प्रतिष्ठित करता है।

''मेरे जीवन का प्रभात गीतों भरा था बस मेरी शाम रंग भरी हो जाए''[6] ये कथन अद्भुत प्रतिभा के धनी गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर जी के हैं। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की सृजनात्मक प्रतिभा 19वीं सदी के लगभग अंत तक मुख्यतः साहित्य, संगीत और नाटक के माध्यम से प्रवाहित होती रही, उन्होंने 1893 से चित्रांकन शुरू कर दिया था। इनकी कला बालपन की चित्रकला से लेकर वयस्कता और आधुनिकता की ओर प्रगति करती हुई चित्रकला है। इनके चित्रों में कला की सत्ता और अर्थवत्ता के सर्वथा नये आयाम हैं। वहाँ दृश्य का पठन है, रेखाओं का उजास है और परम्परा के बजाय अव्यक्त का वह व्यक्त है जिसमें दृश्य हमारे जाने पहचाने हैं परन्तु उनका संसार सर्वथा अलग है। रवीन्द्र नाथ द्वारा अंकित रेखांकनों एवं चित्रों को ध्यान से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके रेखांकन अत्यन्त सहज और सरल हैं। कला समीक्षक आनन्द कुमार स्वामी ने इनकी कला को "Not Childish but Child like" की संज्ञा दी है। गुरूदेव की कलाकृतियों में पूर्वाग्रह तथा परम्परा का कोई प्रभाव नहीं है। परम्परा के बन्धनों में बँधकर स्वच्छन्दता को दबा लेना उन्होंने उचित नहीं समझा। उन्होंने अपने इस रचना-विधान के बारे में कहा भी है- "मुझे कला के किसी सिद्धान्त की स्थापना नहीं करनी है। मुझे तो केवल यह कहकर सन्तोष कर लेना है कि जहाँ तक मेरा अपना सम्बन्ध है, मेरे चित्रों के मूल में कोई सीखी हुई दक्षता नहीं है। वे किसी परम्परा या जान-बूझकर किये गये प्रयत्नों का प्रतिफल नहीं हैं। उनका जन्म तो हुआ है अनुपात की सहजात प्रवृत्ति से, रेखाओं और रंगों के सामंजस्यपूर्ण संघात में मेरी रूचि और प्रसन्नता के कारण।"[7]

अमृता शेरगिल 1929 से 1935 के दौरान एकोल दे बोज़ार में अध्ययन के लिए पेरिस में रही थीं। उच्च कला-शिक्षा प्राप्त कर अमृता शेरगिल जब भारत पहुचीं तो उनके सम्मुख कई मार्ग थे जिसमें प्रथम- बंगाल स्कूल का अनुसरण करना, दूसरा- बंगाल स्कूल और अपनी प्रयोगात्मक दृष्टि के मिश्रण से बीच की शैली को अपनाया जाना और तीसरा मार्ग था कि सब तरह की पूर्ववत् प्रवृत्तियों से मुक्त होकर अपने सर्जनशीलता के दम पर एक नवीन शैली गढ़ी जाये। इनमें से किसी एक पर चलकर वो अपना कार्य आरम्भ कर सकती थीं। वो तीसरे मार्ग को प्राथमिकता देते हुये भारतीय कला जगत में दाखिल हुई तो काफी हलचल पैदा हुई उस समय हर तरफ पुरूषों का साम्राज्य था। अमृता शेरगिल के ऊपर कई दिशाओं से हमले होते रहे पर वो अपने चुने मार्ग पर दृढ़ता के साथ अन्तिम साँस तक चलती रहीं, शायद यही वजह रही कि भारतीय सन्दर्भ में जब भी आधुनिक कला की बात चलती है तो अमृता शेरगिल का नाम अपने आप जुबान पर आ जाता है। अमृता शरगिल के जीवन के घटना-चक्र पर

अगर नजर दौड़ाई जाय तो इस बात को बल मिलता है कि प्रतिभा और उम्र दो भिन्न चीज़ें हैं। वह अपने भोगे जीवन के वास्ते नहीं बल्कि अपने किये कार्य के कारण याद की जाती हैं।

आधुनिक- एक समय सापेक्ष शब्द है। प्रत्येक चीज जो पुरानी है, बीते हुए काल की है, वह कभी अपने समय में आधुनिक थी। समय सापेक्ष संदर्भों में हरेक चीज़ नयी और आधुनिक होती है। इस दृष्टि से बंगाल शैली बींसवीं सदी के प्रारम्भ में आधुनिक थी। लेकिन समसामयिक अर्थों में आधुनिक होते हुए भी बंगाल शैली आधुनिक नही थी। आधुनिक के साथ एक और भाव जुड़ा होता है- अग्रगामी नूतन दृष्टि का। आधुनिक दृष्टि जितना अधिक आगे की ओर ध्यान रखती है, उतना पीछे की ओर नही। पीछे की ओर न देखना या ध्यान न देना परम्परा से कटना नही है, लेकिन परम्परा में बँधना भी नही है। इस अर्थ में बंगाल शैली चाहे जितनी नयी क्यों न हो, लेकिन उसकी दृष्टि आधुनिक की अपेक्षा पुरातन रही।[8] इस समय चित्र रचना में यथार्थ-अनुभवों का परिसर न के बराबर था। समसामयिक जन-जीवन, देश और समाज की घटनाओं से अप्रभावित रहते हुए अतीत के ऐतिहासिक, पौराणिक और महाकाव्यों के रोमांटिक चित्रों की रचना में लगे रहने वाले चित्रकारों के बारे में यह संदेह किया जा सकता है कि वह अंग्रेजों द्वारा उन्हे जो संरक्षण, सम्मान व अनुदान और विदेशों की यात्राओं आदि की सुविधाएं दी जा रहीं थीं, वे शायद किन्हीं ऐसी ही शर्तों से जुड़ी होंगी, जिसके कारण समसामयिक जीवन और घटनाओं को चित्रित न कर सके हों। विषय-वस्तु के लिए वे प्राचीन कथानकों के इर्द-गिर्द ही घूमते रहे। अवनीन्द्रनाथ के शिष्यों में हम देखते है तो उसमें कोई शिव सिद्ध कलाकार तो कोई चैतन्य सिद्ध चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध है।

बंगाल शैली के कलाकारों को अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त था, इसमें कोई दो राय नही। कलकत्ता के राजकीय कला विद्यालय के बाद बंगाल शैली का केन्द्र '**इण्डियन सोसायटी आफ ओरिएंटल आर्ट**' बनी। **1907** में '**सर जॉन बुडरॉफ**' की सहायता से **ई.वी. हैवेल** और **अवनीन्द्रनाथ टैगोर** ने इण्डियन सोसायटी आफ ओरिएंटल आर्ट की स्थापना की, जिसे सरकारी अनुदान प्राप्त होता था। इसके सदस्य भारतीय यूरोपीय, न्यायाधीश, व्यवसायी तथा महाराजा थे। प्रथम अध्यक्ष लार्ड किचनर थे। इसके संस्थापक व संचालकों में पांच भारतीयों के मुकाबले तीस अंग्रेज थे।[9] सन् 1919 ई. में ओ.सी. गांगोली के सम्पादन में कला पत्रिका '**रूपम्**' का प्रकाशन हुआ। इण्डियन सोसायटी आफ ओरिएंटल आर्ट की आड़ में बंगाल के कुछ जमींदारों ने मिलकर नव भारतीय कला जैसी अवधारणा को स्थापित करने की कोशिश की। चूंकि इसके समर्थकों में सामन्तवादी धनिक वर्ग शामिल था जिससे इसका प्रचार-प्रसार जोरों से हुआ। रूपम् पत्रिका ने इसे स्थाई रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इतिहास साक्षी है कि किसी भी तथ्य को प्रमाणित करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस समय जितने भी लेख पत्र-पत्रिकाओं में छपे उनमें नव बंगाल शैली ही केन्द्र बिन्दु में थी। इस समय की किसी भी पत्रिका में अमृता शेरगिल और रवीन्द्रनाथ टैगोर से सम्बन्धित कोई लेख नहीं मिलते शायद वजह उनकी स्वच्छन्द व निजी शैली में कार्य करना रहा हो या जिस सोची समझी रणनीति के तहत कला की पृष्ठभूमि तैयार की जा रही थी उसमें ये फिट न आते हों। अवनीन्द्रनाथ टैगोर के शिष्यों द्वारा हिन्दू धर्म को केन्द्रित किया गया जो कहीं न कहीं 1905 में बंग-भंग आन्दोलन के प्रस्ताव का परिणाम था जिसका ध्येय नव हिन्दू कला को स्थायी रूप देना था। वर्ष 1910 में जब लेडी हैरिंघम भारत आती हैं और बंगाल के कलाकारों में नन्दलाल बोस व असित कुमार हल्दार का एक दल लेकर 1910 ई. में अजन्ता के चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार कराती हैं तो उसका असर उस समय के कलाकारों पर पड़ता है सिवाए अमृता शेरगिल और रवीन्द्रनाथ टैगोर के। अजन्ता के बाद 1914 ई. में जोगीमारा के चित्रों की प्रतिलिपियाँ असित कुमार हल्दार द्वारा और 1921 ई. में बाघ गुफा के चित्रों की प्रतिलिपियाँ नन्दलाल बोस व असित कुमार हल्दार द्वारा बनाई गई। इस तरह प्राचीनता के गौरव-गान में मुस्लिम विरोध के बीज भी बोए गए।

सन् 1934 में इक्कीस वर्षीय अमृता शेरगिल भारत आई तो अपने साथ भारत की स्वप्निल तस्वीर संजो कर लायीं। हालांकि अमृता शेरगिल बहुत ही कम उम्र में इह लोक से विदा ले लेती हैं। रवीन्द्र नाथ टैगोर इस समय चित्रकारी में स्वतंत्र भाव से कार्य कर रहे होते है। दोनों ही कलाकार सृजनात्मक प्रतिभा के धनी होने के साथ साथ चुनौतियों से लोहा लेने वाले थे। जिस समय पूरे बंगाल में मात्र बंगाल शैली का वर्चस्व था, चित्रकारों में नये प्रयोगों के प्रति हिचकिचाहट थी क्योंकि ऐसा करने पर उन्हे विद्रोही करार दिये जाने का भय था ऐसे में उस पूरी व्यवस्था के ही खिलाफ जाकर प्रयोग व स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का उद्घोष करने का श्रेय रवीन्द्रनाथ ठाकुर और अमृता शेरगिल को जाता है। दोनों ही कलाकारों ने भारतीय कला-जगत में व्याप्त ठहराव को तोड़ा। इसी दशक के दरमियान दोनों ही कलाकारों ने ऐसी अभूतपूर्व कलाकृतियों को सृजित किया जिससे पहली बार भारतीय कला संदर्भों (Refrence) से मुक्त नजर आई। धर्म, प्रभुसत्तावर्ग, स्वामीभक्ति की जकड़ से स्वतन्त्र होकर कला ने खुलकर साँस ली, हालांकि ये जाने अनजाने ही हुआ, मगर हुआ। पहली बार कला देवी-देवताओं, राजा-रानियों से दामन छुड़ा कर आम जन से मुखातिब होती है। देवालयों व महलों से निकलकर झुग्गी-झोपड़ी में शरण लेती है और फिर हुआ यूं कि लम्बे अरसे से प्रवाहित होती धार्मिक, पौराणिक, व परम्परागत कला धारा के खिलाफ एक ऐसा कलाकार जाता है जिसे चित्रकला के क्षेत्र में एक चित्रकार के रूप में बड़ी देर से स्वीकृत मिलती है। अशोक मित्र के शब्दों में ''रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भारत की चित्रकला को शीशे की आलमारी के बंद महौल से निकालकर रोजमर्रा के जीवन की बाहों में पहुचाया।[10] गुरूवर ने अनेकानेक चित्रों की रचना की, जो शीर्षक विहीन हैं क्योंकि, उन्होंने किसी भी चित्र की रचना किसी विषय-वस्तु को सामने रख कर कभी नही की। स्वतन्त्रता उनका प्रमुख गुण था। अब सवाल यह भी है कि अगर इन्होंने कैनवास पर आमजन को जगह नही दी होती तो? प्रयोगवादी के बजाय परम्परागत चित्रण ही करते, कैनवास को आम आदमी के लिए नही बनाया होता ? तो शायद आगे चलकर 1943 में जैनुल आबेदीन, चित्तप्रसाद, वह काम नहीं कर पाते जिनके लिए वह आज जाने जाते हैं। उनकी जनवादी विशिष्टताएं ही औरों से उन्हें अलग पहचान दिलवाती हैं। ठाकुर रवीन्द्रनाथ ने तरूण चित्रकारों के लिए सृजन की स्वतन्त्रता का नया मार्ग दिखलाया। उन्होने कला की स्वतन्त्रता और कलाकार की स्वतन्त्रता के मर्म को बतलाया।

मनोविज्ञान की दृष्टि से देखे तो इडीपस मनोग्रन्थि से उत्पन्न हलचलपूर्ण व्याकुलता के कारण ही कलाकार नैतिक अहम् के रूप में स्थापित सांस्कृतिक मानदण्डों का ध्वंस कर के नवीन रूपों का सृजन करता है। इसी मनोग्रन्थि के उदात्तीकरण के कारण, आधुनिक कलाकार "भव्य" व महान विषयों का परित्याग कर, साधारण व्यक्तियों, वस्तुओं और स्थानों के चित्रण में अधिक रूचि लेते हुए, प्रतिदिन नवीन रूपों का सृजन कर पूर्व स्थापित को छोड़ता जाता है। यह विशेषता हमें सर्वप्रथम बंगाल शैली के रूपों से एकदम भिन्न रवीन्द्र नाथ ठाकुर के अनगढ़ व कुरूप शक्तिमय रूपों में दिखाई देता है। अमृता शेरगिल अपने उच्चवर्गीय जीवन से हटकर, निम्नवर्गीय जीवन को चित्रण का विषय बनाया और बंगाल शैली से हटकर, नवीन मार्ग प्रशस्त किया। इसी श्रेणी में गगनेन्द्र नाथ, यामिनी राय व उनके बाद के कलाकारों में रामकिंकर बैज, एम.एफ हुसैन, के.के हैब्बर, एन.एस बेन्द्रे ने नवीन रूपों और रंगों का चयन किया और पुन: अपने ही द्वारा स्थापित सिद्धान्तों को भंग कर सदैव नवीनता की ओर अभिमुख रहें। इसी से इनके चित्रों में इतनी विविधता मिलती है।[11] गुरू रवीन्द्र नाथ ठाकुर को भारत का प्रथम रचनात्मक चित्रकार माना गया है। इन्होंने भारत में चित्रकला के क्षेत्र में क्रांति का सूत्रपात किया। उनकी अपनी व्यापक भावधारा से पुष्ट होकर जो रंग व रेखाएँ उभरीं, वे चित्र बन गईं। इन चित्रों का न कोई रूप-विधान था, न नियम, न ही कोई लाक्षणिक आधार।[12] रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने कहा था-''मेरी विद्या किसी कला स्कूल की पढ़ाई वाली नहीं है इसलिए चित्र शायद कभी पूरे ही नहीं होते।''[13] ब्रिटिश उपनिवेश के दौर में स्वच्छन्द व मौलिक कलाकृतियों का सफर कोलकाता स्थित जोड़ासाँको ठाकुरबाड़ी से शुरू होकर शान्तिनिकेतन के खुले प्रागड़ में विस्तार पाता है।

'भारतीयता को प्रदर्शित करती अमृता शेरगिल द्वारा बनायी गई 'तीन बहनें' नामक कृति को जब हम देखते हैं तो हमें साधारण सी तीन आकृतियाँ दिखती हैं, हम जान रहे कि वो तीन बहनें हैं पर ये कौन लोग हैं, काफी जद्दोजहद के बाद भी हम चिन्हित नहीं कर सकते कि ये महिलाएँ किस धर्म या जाति की हैं-हिन्दु हैं, मुस्लिम हैं या फिर सिक्ख, हम उन्हें भारतीयता से पहचानते हैं। आगे पीछे बैठी ये लड़कियाँ अपने-अपने कारणों से उदास हैं। उनकी नजरें झुकी हुयी हैं ऐसा लगता है मानो बाहर की अपेक्षा वे अन्दर की ओर झाँक रहीं हों, कुछ तलाश रही हों। शरीर के नाम पर वे तीन इकाईयाँ हैं पर उदासी उन्हे एक इकाई में पिरोए हुए है। इसी क्रम में एक अन्य कृति 'मदर इण्डिया' को जब हम देखते हैं तो, फिर एक ही सवाल ज़हन में दस्तक देता है कि अखिर है कौन ? हाँ हमें ये मालूम है कि वो गरीब औरत है पर हम उसका नाम नही जानते, क्योंकि उसका कोई संदर्भ नही जिससे हम जान सके कि वह है कौन और उसका अस्तित्व क्या है? अगर अमृता शेरगिल की कला को अन्तस् की रोशनी में देखें तो सबकुछ साफ दिखता है कि कितनी उन्मुक्त व स्वतन्त्र थी उनकी कला। परन्तु अब तक की भारतीय कलाओं पर एक दृष्टि डाले तो संदर्भों से पूरी की पूरी दुकान भरी पड़ी है देवी-देवताओं और धार्मिक पदों से सम्बन्धित प्रसंग की झाँकियों के साथ-साथ महान पराक्रमी सम्राटों व राजाओं के ऐश्वर्य व वैभव को दर्शाते चित्रों का मज़मा लगा हुआ मिलता है। सम्राट अशोक, गौतम बुद्ध, हरिश्चन्द्र व शकुन्तला से हम बार - बार परिचित होते हैं। अकबर, शाहजहाँ और जहाँगीर के दरबार में हम खुद को बार-बार पाते हैं। महाभारत व रामायण के कथानकों से सजी पोथियों को अपने समक्ष खुली पाते हैं। इसके अलावा अन्य धार्मिक कथानकों व कहानियों के संदर्भ प्रस्तुत हैं। भारतीय कला का जो हजारों साल का इतिहास है उसमें एक बहुत बड़ा काम पहली बार कला को मुक्त करने का किया गया। यहाँ से कला की स्वंतन्त्रता की शुरूआत होती है। हम निश्चय ही यह कह सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर और अमृता शेरगिल ने भारतीय कला की मुक्त धारा प्रवाहित कर कला के आधुनिक अध्याय की शुरूआत की।

अमृता शेरगिल के चित्रों की एक खास विशेषता यह भी रही कि वह सीधे विषय को ही फोकस करती हैं। फालतू की दखलन्दाजी को काँट-छाँट कर निकाल देती हैं ताकि दर्शक की नजर इधर-उधर न भटके। आगे अन्य कृतियों में, 'पर्वतीय पुरूष', 'पर्वतीय स्त्रियाँ', 'द ब्राइड्स ट्वायलेट', 'अछूत कन्या', 'ब्रह्मचारी', 'केला बेचने वाली', 'चारपाई पर विश्राम करती महिला', 'विलेज सीन', 'बाज़ार को जाते हुए दक्षिण भारतीय ग्रामीण', इन चित्रों में भारतीय जन जीवन की गरीबी, भोलापन, असहायता, बेबसी एवं लाचारी विशेष उल्लेखनीय है। इनके चित्रों में दलित वर्ग की भूख, प्यास और पीड़ा बोलती है। हिन्दी कथा साहित्य में जो कार्य प्रेमचन्द ने किया, वही कार्य चित्रकला के क्षेत्र में अमृता शेरगिल ने किया। अमृता शेरगिल के चित्रों में भारत की आत्मा बोलती है। उस समय का भारत तथा भारत में व्याप्त गरीबी उनके रंग और रेखाओं में साकार हो उठी।

जिस समय कलाकारों का अधिकांश वर्ग अतीत में उलझा हुआ था और कला सम्बन्धी विचारों में एक अजीब अस्पस्टता फैली हुई थी। उस समय भारतीय कला की एक सार्थक और समर्थ कला विधा के रूपों से हमारा परिचय गुरूवर रवीन्द्रनाथ टैगोर और अमृता शेरगिल ने करवाया। इन्होने भारतीय कला को नया मूल्य देकर अपने प्रयोगों से बाद के कई चित्रकारों को नवल प्रयोग करने की उमंग दी। शायद उसी का परिणाम है कि आज अपूर्व प्रयोगों की बौछार समकालीन कलाकारों की प्रमुख विशेषता बनी हुयी है। अब तक राष्ट्रीयता के मोह से उपजी और बिना किसी ठोस जमीन के जड़ों के अभाव से निकली भ्रान्तियों और भावुकताओं पर निर्भर जो कला थी, क्या सच्चे अर्थों में वो भारतीय आधुनिक कला थी? आधुनिक भारतीय कला के हस्ताक्षर का पता लगाने के लिए हमें एक बार फिर से बंगाल शैली के आन्दोलन में शामिल होने की जरूरत है ताकि पता चल सके बंगाल शैली भारत जैसे विशाल देश की राष्ट्रीयता से जुड़ी थी या बंगाल की प्रान्तीय भावना से। जिसे भारतीयता और राष्ट्रीयता का लेबिल लगाकर, राष्ट्रीय शैली के रूप में प्रतिष्ठित कर पूरे देश में एक सुनियोजित ढंग से फैला दिया गया। जे.वी.एस.

विलसन का मत है कि बंगाल शैली की उत्प्रेरक-शक्तियाँ व प्रेरणा-तत्व कृत्रिम रहे, जिसके परिणाम स्वरूप कुछ अपवादों को छोड़ इस शैली के चित्र प्राय: एक रीति-बद्ध ढंग से गढ़े गये, जो अशक्त और निष्प्राण हैं। ये चित्र किसी स्वतन्त्र या वैयक्तिक महान प्रतिभा का उद्घाटन नहीं कर पाते।[14] अमृता शेरगिल और रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने जिस उन्मुक्त भारतीय चित्रकला को स्वतन्त्र चेतना प्रदान की उसी से एक सामाजिक यथार्थवाद का एक नया जनपरक प्रगतिशील क्षितिज का निर्माण हुआ। जिससे भारतीय चित्रकला भविष्योन्मुख हो चली, जो पिछले से कहीं अधिक प्राणवान, सशक्त और जीवंत रही।

सन्दर्भ सूची–

1. जोशी,डॉ० ज्योतिष, समकालीन कला, ललित कला अकादमी का प्रकाशन, रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली - 110001 अंक 48, फरवरी 2016,पृष्ठ संख्या- 68 से 71
2. अग्रवाल,डॉ० गिर्राज किशोर, आधुनिक भारतीय चित्रकला, संजय पब्लिकेशन्स, शैक्षिक पुस्तक प्रकाशक, आनन्द कॉम्पलैक्स, किदवई पार्क राजा मण्डी, आगरा-2, ग्यारहवाँ संशोधित संस्करण :2015
3. भटनागर,डॉ० नैन, चन्द्रिकेश,डॉ० जगदीश बंगाल शैली की चित्रकला, अनन्य प्रकाशन सी -6/128 सी, लारेंस रोड, दिल्ली-110035 (भारत), प्रथम संस्करण- 2001, पृष्ठ संख्या- 16
4. बादल राजेश, राज्य सभा टी.वी., विरासत- रवीन्द्रनाथ टैगोर (पार्ट -2), प्रकाशित 4 मई 2016
5.जोशी,डॉ० ज्योतिष, समकालीन कला, ललित कला अकादमी का प्रकाशन, रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली- 110001 अंक 44-45, पृष्ठ संख्या- 31
6.प्रताप,डॉ० रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, तेरहवाँ संशोधित संस्करण-2012, पृष्ठ संख्या-337-341
7. गैरोला वाचस्पति,भारतीय चित्रकला, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू.ए.,जवाहरनगर, बंगलो रोड पो॰ बा॰ नं॰ 2113 दिल्ली 110007
8. भटनागर,डॉ० नैन, चन्द्रिकेश,डॉ० जगदीश बंगाल शैली की चित्रकला, अनन्य प्रकाशन सी -6/128 सी, लारेंस रोड, दिल्ली-110035 (भारत), प्रथम संस्करण- 2001, पृष्ठ संख्या- 85
9.चतुर्वेदी,डॉ० ममता, समकालीन भारतीय कला (1850ई. से लेकर वर्तमान तक), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या-7
10.भारद्वाज,विनोद, वृहद आधुनिक कला कोश, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या-75
11.VERMA, S.P, CHATURVEDI, G.M,Creativity and Contemporary Art in India, Published by Utkarsh Fankar Society, Aligarh, First Publish in June 1987, Page no: 57 -58
12.प्रताप, डॉ० रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, तेरहवाँ संशोधित संस्करण-2012, पृष्ठ संख्या-337
13.दईया,पीयूष, कला-भारती (खण्ड: दो), ललित कला अकादेमी का प्रकाशन, रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली – 110001, पृष्ठ संख्या- 439
14.भटनागर,डॉ० नैन, चन्द्रिकेश,डॉ० जगदीश, बंगाल शैली की चित्रकला, अनन्य प्रकाशन सी -6/128 सी, लारेंस रोड, दिल्ली-110035 (भारत), प्रथम संस्करण- 2001, पृष्ठ संख्या- 85